दैनिक जागरण

जीवन में कोई ऐसी समस्या नहीं जिसका समाधान न हो

बेलगाम बंगाल

पश्चिम बंगाल में चुनाव बाद भी हिंसा जारी रहने पर केंद्र सरकार ने चिंता प्रकट करते हुए राज्य सरकार को कानून एवं व्यवस्था बनाए रखने और लापरवाह अधिकारियों के खिलाफ कठोर कार्रवाई करने की जो सलाह दी उसके अनुरूप कुछ होने के आसार कम ही हैं, क्योंकि मुख्यमंत्री ममता बनर्जी के अनुसार उनके राज्य में सब कुछ ठीक है और जो गड़बड़ी हो भी रही है उसके लिए बाहरी तत्व जिम्मेदार हैं। उनका यह भी मानना है कि ये बाहरी तत्व भाजपा ने बुलाए हैं। आखिर ऐसी सोच के रहते यह उम्मीद कैसे की जा सकती है कि बंगाल में जारी हिंसा थमेगी? बंगाल में चुनाव के पहले से ही शुरू हो गई राजनीतिक हिंसा जिस तरह रुकने का नाम नहीं ले रही उससे प्रदेश ही नहीं देश की भी बदनामी हो रही है। देश में यही एक अकेला ऐसा राज्य बचा है जहां राजनीतिक हिंसा का वीभत्स रूप देखने को मिल रहा है। निःसंदेह इसका कारण यही है कि हिंसक तत्वों को तृणमूल कांग्रेस का संरक्षण हासिल है। हालात इसलिए नहीं संभल रहे, क्योंकि पुलिस प्रशासन सत्ताधारी दल की शाखा की तरह व्यवहार कर रहा है। बंगाल में राजनीतिक एवं चुनावी हिंसा वामदलों के जमाने से ही हो रही है। माना यह जाता था कि वामदलों की मनमानी से लड़कर सत्ता में आईं ममता बनर्जी अन्य अनेक बदलाव लाने के साथ ही राजनीतिक संस्कृति को भी परिवर्तित करने का काम करेंगी, लेकिन ऐसा नहीं लगता कि उन्होंने परिवर्तन के अपने नारे को लेकर तनिक भी गंभीरता दिखाई। इसके बजाय उन्होंने वामदलों वाली ही संस्कृति अपना ली। वामदलों के नेताओं और कार्यकर्ताओं के साथ-साथ उन्होंने अन्य अराजक तत्वों को भी तृणमूल कांग्रेस का हिस्सा बना लिया। इसके दुष्परिणाम सामने आने ही थे।

समस्या केवल यही नहीं है कि ममता बनर्जी राजनीतिक हिंसा को रोकने के लिए कोई कदम नहीं उठा रही हैं, बल्कि यह भी है कि वह इस हिंसा में लिप्त तत्वों का खुलेआम बचाव कर रही हैं। ऐसा रवैया वही अपना सकता है जो राजनीतिक वैमनस्य से ग्रसित हो और जिसे अपने शासन की छवि की कोई परवाह न हो। पता नहीं क्यों ममता बनर्जी यह समझने को तैयार नहीं कि उनकी ओर से वामदलों वाले तौर-तरीके अपनाने के कारण ही उनकी राजनीतिक जमीन खिसकती चली जा रही है। कोई भी दल अथवा नेता अलोकतांत्रिक तौर-तरीकों को बढ़ावा देकर अपनी राजनीतिक जमीन मजबूत नहीं कर सकता। विडंबना यह है कि लोकसभा चुनावों में आघात लगने के बाद ममता बनर्जी ने पहले से अधिक अलोकतांत्रिक रुख-रवैया अपना लिया है। जनादेश को स्वीकार करने से बचने के साथ ही वह मोदी सरकार के प्रति जैसा अनुदार रवैया अपनाए हुए हैं वह मुख्यमंत्री के पद पर आसीन नेता को शोभा नहीं देता। कानून एवं व्यवस्था राज्यों के अधिकार क्षेत्र वाला एक ऐसा विषय है जिस पर ममता बनर्जी बढ़-चढ़कर बोलती रही हैं। यह उनकी नैतिक ही नहीं, संवैधानिक जिम्मेदारी है कि बंगाल में जारी राजनीतिक हिंसा पर प्रभावी ढंग से रोक लगे। एक मुख्यमंत्री के रूप में वह अपने दायित्वों का निर्वहन सही ढंग से करें, इसकी चिंता केंद्र सरकार के साथ-साथ अन्य दलों को भी करनी चाहिए।

मोबाइल गेम पर नियंत्रण

बिहार के भागलपुर में हुई घटना एक उदाहरण है कि किस तरह मोबाइल की लत बच्चों की जान ले रही है। मोबाइल पर पबजी गेम खेल रहे 17 साल के एक छात्र ने इसलिए खुदकशी कर ली कि वह हार गया था। वह इंटर की परीक्षा देने के बाद प्रतियोगी परीक्षाओं की तैयारी कर रहा था। उसे मोबाइल पर गेम खेलने की लत लग चुकी थी। खेल में हुई हार को वह बर्दाश्त नहीं कर सका और फांसी लगा ली। तकनीक और तेजी से बढ़ रहे संचार के इस युग में बच्चों को इसके बीच रहते हुए किस तरह उचित मार्गदर्शन और प्रशिक्षण दिया जाए, इस पर चिंतन-मंथन करना जरूरी है। बहुत छोटी उम्र से ही उसकी दुनिया मोबाइल में सिमटती जा रही है। इसके लिए अभिभावक भी दोषी हैं, जो चार-पांच साल के बच्चों के हाथ में भी मोबाइल पकड़ा देते हैं। वह बच्चा इस पर गेम खेलते-खेलते इसकी लत का शिकार हो जाता है। आज अमूमन यही हो रहा है। चिड़चिड़ापन, असुरक्षा और आत्मविश्वास की कमी उसके जीवन का हिस्सा बनता जा रहा है। एक तरफ स्कूल से लेकर ट्यूशन तक पढ़ाई का दबाव तो दूसरी ओर थोड़ा सा वक्त मिलते ही मोबाइल और इंटरनेट। यह कतई सही नहीं है। ऐसी घटनाएं इसी का परिणाम हैं। इस पर भी विचार करने की आवश्यकता है कि बच्चों के खेलकूद व मनोरंजन के कोई साधन नहीं हैं। कंक्रीट के जंगलों में तब्दील हो रहे शहरों में मैदान तक नहीं हैं, जहां बच्चे खेल सकें। पहले चारों तरफ छोटे-बड़े मैदान हुआ करते थे, जहां बच्चे दोस्तों के साथ खेला करते थे। इससे उनका शारीरिक विकास भी हो सकता था, लेकिन आज के दौर में यह सब तेजी से छिनता चला जा रहा है। लाइब्रेरी तक नहीं है, जहां वे बैठकर अच्छी किताबें पढ़ सकें। इस स्थिति में मोबाइल ही उनका सहारा बनता है और वही इनका साथी। किसी भी चीज की एक सीमा होती है। इसका इस्तेमाल भी अब अति की सीमा पार करता जा रहा है। इससे पहले भी मोबाइल पर ऐसे गेम आए हैं, जिसमें बच्चों ने अपने हाथ की नस तक काट ली। मोबाइल गेम पर समय रहते नियंत्रण लगाना होगा, अन्यथा बड़ी कीमत चुकानी होगी।

हिंदी विरोध की खोखली राजनीति

हृदयनारायण दीक्षित

भाषाएं भले अलग हों पर सबका अंतस एक है। तमिल, तेलुगु, मलयालम और कन्नड़ के बिना हिंदी का शृंगार अधूरा है और हिंदी के बिना राष्ट्र की अभिव्यक्ति अधूरी है

अवधेश राजपूत

भारत अद्वितीय राष्ट्र है। सारी दुनिया में बेजोड़। इंद्रधनुषी विविधिता। फिर भी एक सांस्कृतिक निरंतरता। यह विश्व का सबसे बड़ा संसदीय जनतंत्र है, लेकिन राजभाषा के प्रश्न पर हम सभी देशों से पीछे हैं। महात्मा गांधी ने लिखा था, 'पृथ्वी पर हिंदुस्तान ही एक ऐसा देश है जहां माता-पिता बच्चों को अपनी मातृभाषा के बजाय अंग्रेजी पढ़ाना-लिखाना पसंद करेंगे।' संविधान सभा ने 14 सितंबर 1949 को हिंदी को राजभाषा बनाया। पं. नेहरू ने कहा, 'हमने अंग्रेजी इस कारण स्वीकार की कि वह विजेता की भाषा थी। अंग्रेजी कितनी ही अच्छी हो, किंतु इसे हम सहन नहीं कर सकते।' सभा में राजभाषा का प्रस्ताव एनजी आयंगर ने रखा और कहा कि हम अंग्रेजी को एकदम नहीं छोड़ सकते। हमने सरकारी प्रयोजनों के लिए हिंदी को अभिज्ञात किया है। फिर भी मानना चाहिए कि वह समुन्नत भाषा नहीं है।' हिंदी राजभाषा बनी। 15 साल तक अंग्रेजी चलाने का भी प्रावधान बना। हिंदी समृद्धि की जिम्मेदारी अनुच्छेद 351 के तहत केंद्र पर डाली गई। तब से 60 वर्ष हो गए। दक्षिण की राजनीति में राजभाषा हिंदी का विरोध जारी है। वे राष्ट्रीय शिक्षा नीति के मसौदे के त्रिभाषा सूत्र को 'हिंदी थोपना' बता रहे हैं। केंद्र के सकारात्मक आश्वासन के बावजूद केंद्र सरकार के कार्यालयों के हिंदी नाम पट्ट पोते जा रहे हैं। वे विवेकपूर्ण विमर्श को तैयार नहीं हैं।

भाषा प्रसार का इतिहास ध्यान देने योग्य है। मध्यकाल के अधिकांश बादशाह फारसी थोपना चाहते थे, लेकिन अरबी-फारसी के विद्वान भारत की भाषाई पहचान के लिए हिंदी शब्द ही प्रयोग करते थे। हिंदी की महफिल में फारसी और अरबी के शब्द याराना ढंग से मिलते रहे। ईस्ट इंडिया कंपनी के कर्ताधर्ता अंग्रेजी भाषी थे। कंपनी के निदेशक मंडल ने एक पत्रक में अपना इरादा बदला और कहा कि 'प्रयुक्त भाषा को वादी-प्रतिवादी वकील तथा सामान्य जन भी जाने।' ऐसी भाषा हिंदी थी। यही तमिलनाडु तब मद्रास प्रेसीडेंसी था। 1937 में सी. राजगोपालाचारी के नेतृत्व वाली मद्रास सरकार ने हिंदी पढ़ाने का आदेश दिया था। आंदोलन हुआ तो आदेश वापस लिया गया, लेकिन हिंदी की आवश्यकता जताई गई। कोई भी भारतीय भाषा थोपी नहीं गई। अंग्रेज सत्ताधीशों ने अंग्रेजी को ही हर तरह से थोपा। भारतीय भाषाएं बोलने वाले अपमानित हुए। ताजे हिंदी विरोध का मूल स्वर अंग्रेजी थोपना है। तमिल की स्वीकार्यता स्वाभाविक है। वह भारतीय है, लेकिन अंग्रेजी की पक्षधरता अस्वाभाविक होने के साथ ही साम्राज्यवादी खंडहरों की शव उपासना है।

भाषाएं थोपने से लोक स्वीकृति नहीं पातीं। उपयोगिता के कारण ही हिंदी का क्षेत्र लगातार बढ़ा है। भारत में सौ करोड़ से ज्यादा हिंदी भाषी हैं। काम चलाऊ हिंदी बोलने वालों की संख्या लगभग ढाई करोड़ है। पाकिस्तान, बांग्लादेश, दुबई, सऊदी अरब, ओमान, फिजी, म्यांमार, रूस, कतर, फ्रांस, जर्मनी, अमेरिका और पड़ोसी नेपाल में लाखों हिंदी भाषी हैं। हिंदी प्रसार का कारण उपयोगिता है। बेंगलुरु आइटी का गढ़ है। बेंगलुरु सहित पूरा कर्नाटक हिंदी भाषी युवाओं से भरा है। तमिलनाडु की नई पीढ़ी में भाषा को लेकर कमोबेश द्वंद्व नहीं है। हिंदी सिनेमा और धारावाहिक सर्वत्र लोकप्रिय हैं। उत्तर भारत में दक्षिण भारतीय फिल्मों के करोड़ों दर्शक हैं। 'बाहुबली' ने हिंदी में अरबों रुपये कमाए थे, लेकिन राष्ट्रीय भावना को न समझने वाले दल हिंदी थोपने का शोर मचाकर राजनीति चमकाते हैं। 2017 में भी बेंगलुरु और तमिलनाडु के राष्ट्रीय राजमार्गों से हिंदी नाम पट्ट हटाने का आंदोलन चला था। आरोप था कि भाजपा के नेतृत्व वाली केंद्र सरकार तमिल भावनाओं का सम्मान नहीं करती। तमिलनाडु भारतीय संस्कृति दर्शन का क्षेत्र रहा है। भारत में तमिल भावना का सम्मान है। अंग्रेजी की वरीयता तमिल भावनाओं से संगत नहीं है।

तमिल साहित्य में संस्कृति का दर्शन है। सुब्रहमण्यम भारती प्रख्यात तमिल साहित्यकार व चिंतक थे। अंग्रेज अंग्रेजी को सभी भारतीय भाषाओं से श्रेष्ठ बताते थे। भारती ने लिखा, 'तमिल में ऐसा जीवंत काव्य और दार्शनिक साहित्य है जो इंग्लैंड की भाषा से कहीं अधिक भव्य है।' भारतीय साहित्य की श्रेष्ठता पर जोर देते हुए भारती ने लिखा, 'मैं नहीं समझता कि यूरोप की कोई भाषा वल्लुवर के 'कुरल', कंबन की 'रामायण' और इलंगो की 'शलप्पतिहारम' जैसी रचनाओं जितना गर्व कर सकती है।' तमिल चिंतक भारती अंग्रेजी से टकरा रहे थे, लेकिन तमिल राजनीति अपनी ही राजभाषा हिंदी के विरोध में अंग्रेजी की अंगरक्षक बन रही है। अभी राष्ट्रीय शिक्षा नीति पर बहस जारी है। भारती के समय भी यह बहस थी। उन्होंने लिखा था कि 'राष्ट्रीय शिक्षा का आधारभूत सिद्धांत है-पाठ्यक्रम में राष्ट्रभाषा को प्रमुखता प्रदान करना।' भारती सांस्कृतिक दिग्गज थे। हिंदी जानते थे। 1908 में उन्होंने तिलक को पत्र लिखा, 'मुझे पंडित कृष्ण वर्मा की चिट्ठी मिली है। कहा गया है कि हम मद्रास में चेन्नै जनसंगम के सौजन्य से हिंदी की कक्षा खोलें। हमने पहले से ही ऐसी कक्षा खोल रखी है। उम्मीद है कि भविष्य में हिंदी सीखने वालों की संख्या बढ़ेगी।'

भारती ने राष्ट्रीय शिक्षा नीति का मूल मंत्र घोषित किया था कि 'इतिहास ही नहीं, वरन सभी विषय राष्ट्रभाषा में पढ़ाए जाने चाहिए। राष्ट्रभाषा के अतिरिक्त अन्य किसी भाषा के माध्यम वाली शिक्षा को राष्ट्रीय शिक्षा कहना क्या पूर्ण रूप से अनुचित नहीं होगा?' हिंदी प्रसार तमिल क्षेत्र की जरूरत रहा है। 1918 में महात्मा गांधी ने भी दक्षिणी राज्यों में हिंदी प्रसार के लिए 'दक्षिण भारत हिंदी प्रचार समिति' बनाई थी। समिति के महासचिव एस. जयराम के अनुसार 'हिंदी सीखने वालों की संख्या दोगुनी से ज्यादा बढ़ी है। 2009 में 2.68 लाख परीक्षार्थी थे और 2018 में 5.80 लाख।' इस वर्ष यह संख्या छह लाख हो सकती है। आंकड़ों के अनुसार इसमें तमिलनाडु प्रथम है। तेलंगाना सहित आंध्र दूसरे क्रम पर है। कर्नाटक तीसरा है और केरल चौथा है। उद्योग व्यापार की जरूरतों, कला और संस्कृति आदि कारणों से हिंदी का प्रसार बढ़ा है।

भाषाएं संस्कृति को प्रभावित करती हैं, संस्कृति व दर्शन से प्रभावित भी होती हैं। सांस्कृतिक दृष्टिकोण से सारी भारतीय भाषाएं एक जैसी हैं। तमिल कवि कंबन और संस्कृत कवि वाल्मीकि दोनों ने ही रामकथा लिखी है। दोनों का सांस्कृतिक मूल एक है। बेशक भारत बहुभाषिक राष्ट्र है लेकिन अमेरिकी विद्वान एमेन्यू ने उसे एक भाषी माना है। प्रत्येक मुख की अपनी भाषा है, लेकिन सबका अंतस एक है। तमिल, तेलुगु, कन्नड़ के बिना हिंदी का शृंगार अधूरा और हिंदी के बिना राष्ट्र की अभिव्यक्ति अधूरी। तमिल, कन्नड़ आदि से हिंदी का बैर नहीं। हिंदी सबको जोड़ने वाला रससूत्र है। दक्षिण में हिंदी प्रयोग से राष्ट्रीय एकता मजबूत होगी। हिंदी भाषी भी सजग नहीं जान पड़ते। हिंदी की तमाम बोलियों को आठवीं अनुसूची में शामिल करने की मांगें उठती हैं। भोजपुरी हिंदी का ही प्रेमपूर्ण हिस्सा है। मधुरसा भोजपुरी के बिना हिंदी रसहीन होगी। अवधी या बृजभाषी भी ऐसी ही मांग करें तो राजभाषा हिंदी का गौरव कैसे बना रह सकता है? दक्षिण के मित्र भी विचार करें। अंग्रेजी का मोह छोड़ें। राजभाषा व अपनी भाषाओं से प्यार करें। नया भारत अपनी भाषाओं के अंगहार में ही शोभायमान होगा।

(लेखक उत्तर प्रदेश विधानसभा के अध्यक्ष हैं)

response@jagran.com

अलीगढ़ से निकले खतरनाक संकेत

अवधेश कुमार

क्या अपराध का आकलन मजहब के आधार पर होगा? ऐसा करके हम भविष्य के लिए कैसा समाज बना रहे हैं?

अलीगढ़ के टप्पल में दो साल की बच्ची के साथ हुई हैवानियत से शायद ही कोई ऐसा इंसान हो जिसका दिल न पसीजा हो। इस अमानवीय घटना से लोग बुरी तरह आक्रोशित हैं जिसकी अभिव्यक्ति सोशल मीडिया पर देखी जा सकती है। वहीं देश में एक वर्ग ऐसा भी है जो अमूमन हर बात पर सक्रिय रहता है, लेकिन इस घटना पर शुरुआत में उसने चुप्पी साधे रखी। इसके लिए उन्हें जब आड़े हाथों लिया गया तभी जाकर उनमें से कुछ ने निंदा की औपचारिकता पूरी की। उसी तबके में कुछ लोग ऐसे हैं जो बच्ची के लिए इंसाफ की मुहिम चलाने वालों पर ही मामले को सांप्रदायिक तूल देने के बहाने सामाजिक तानाबाना बिगाड़ने का आरोप लगा रहे हैं। ऐसी उलट प्रतिक्रिया ने लोगों के गुस्से को और उबाल दिया। पुलिस ने कुछ अपराधियों को पकड़ लिया है। उन पर रासुका लगाया जा रहा है। उत्तर प्रदेश सरकार ने एक विशेष जांच दल का गठन किया है। उम्मीद करनी चाहिए कि फास्ट ट्रैक अदालत में इन अपराधियों को जल्द ही सजा मिलेगी।

किंतु मामला यहीं खत्म नहीं होता। इसके कुछ पहलू हैं जो सरकार और समाज दोनों के लिए विचारणीय और भविष्य के लिए सचेत करने वाले हैं। इसमें सबसे पहले हमें स्थानीय पुलिस के व्यवहार को देखना होगा। बेशक, पुलिस की भूमिका अपराध के बाद आरंभ होती है, लेकिन वह भूमिका निभाए ही नहीं तो अपराधियों का हौसला बढ़ता है। बच्ची के परिवार की आर्थिक पृष्ठभूमि बहुत अच्छी नहीं है और पैसे लौटाने की बात पर ही यह विवाद शुरू हुआ था। इस पर आरोपी ने देख लेने की धमकी दी और उसने वाकई ऐसा वीभत्स अपराध अंजाम दिया जिसकी दुःस्वप्न में भी कल्पना नहीं की जा सकती। बच्ची 30 मई को गायब हुई। परिवार थाने में रपट लिखवाने गया, लेकिन उन्हें मायूसी ही मिली। किसी तरह 31 मई को गुमशुदगी रिपोर्ट लिखी गई। अगर अपराधियों ने शव अपने घर के आसपास कूड़े में दबाने के बजाय 40-50 किलोमीटर दूर ठिकाने लगाया होता तब क्या होता?

बच्ची का शव मिलने के बाद भी जिस तरह पुलिस को सक्रिय होना चाहिए, वह नहीं हुई। लापरवाही के आरोप में अब इंस्पेक्टर समेत पांच पुलिसकर्मी निलंबित किए गए हैं। निलंबन पुलिस में सामान्य प्रक्रिया है। दो जून को बच्ची का शव आरोपी के घर के बाहर कूड़े के ढेर में मिला। महिला सफाईकर्मी ने कूड़े के ढेर से कपड़े के एक बंडल को कुत्तों को खींचते हुए देखा। उसने शोर मचाया तो लोगों की भीड़ इकट्ठी हो गई। कपड़े की गठरी खोलकर देखी गई तो उसमें बच्ची का क्षत-विक्षत शव मिला। सूचना पर पहुंची टप्पल पुलिस शव को पोस्टमार्टम के लिए ले गई। इस रवैये से लोग

और भड़क गए, क्योंकि उनका शक यकीन में बदल गया था कि यह किसकी करतूत है और इसके पीछे मानसिकता क्या है। गुस्साए लोग आरोपी जाहिद और उसके परिवार को गिरफ्तार करने की मांग कर रहे थे। हारकर एसएसपी व अन्य अधिकारियों को डॉग स्क्वॉड के साथ आना पड़ा। खोजी कुत्ता सूंघते हुए कोट मोहल्ला निवासी जाहिद के घर तक पहुंचा। इसके बाद पुलिस ने जाहिद को हिरासत में लिया। उससे पूछताछ के बाद अपराध में उसके भागीदार असलम को गिरफ्तार किया गया। राज्य सरकार को इस पर सोचना होगा कि आखिर इतने कड़े निर्देशों के बावजूद पुलिस का रवैया बदल क्यों नहीं रहा? छोटी बच्चियों के साथ जघन्य अपराधों की घटनाएं लगातार सामने आने के बावजूद उसने इसे गंभीरता से क्यों नहीं लिया? शव मिलने के साथ ही अपराधियों तक पहुंचने के लिए डॉग स्क्वॉड की मदद क्यों नहीं ली? लोग दबाव नहीं डालते तो हो सकता है कि अभी तक अपराधी पकड़ में ही नहीं आते। निलंबन के कोई मायने नहीं है। इन पुलिस कर्मियों के खिलाफ मुकदमा चलना चाहिए।

अब दूसरे पहलू की बात करते हैं। आखिर इन अपराधियों ने बच्ची को ही बदले के लिए क्यों चुना और उसके साथ ऐसा निर्मम व्यवहार क्यों किया? पुलिस का कहना है कि बदले की भावना से जाहिद ने असलम के साथ मिलकर साजिश रची। शव की हालत इतनी खराब थी कि पोस्टमार्टम करने वाले तीन डॉक्टरों के पैनल के सामने समस्या थी कि वे पोस्टमार्टम कैसे करें? पैनल की राय पर गौर करें तो शव के गलने की स्थिति से उसकी हत्या के साक्ष्य विलुप्त हो चुके थे। चूंकि मामला देशव्यापी हो गया है तो उसकी हकीकत सामने आनी ही थी। रासुका लगाने का निर्णय भी ऐसे ही नहीं हुआ। स्थानीय लोगों को पता चला कि दोनों ने सांप्रदायिक उन्माद की मानसिकता से ग्रस्त होकर इतनी हैवानियत की। अगर यह सच है तो फिर समस्या इस सोच की है। इस सोच का मुकाबला कैसे किया जाए। इस पर पुलिस-प्रशासन, नेताओं के साथ ही हर समुदाय के विवेकशील लोगों को इस पर विचार करना होगा। ऐसी मानसिकता से अपराधों को अंजाम दिया जा रहा है। दुर्भाग्य से जहां बहुसंख्यक समुदाय आरोपी होता है वहां तो देश में खूब हंगामा होता है और पुलिस भी आरंभिक स्तर पर सक्रिय हो जाती है। जहां अल्पसंख्यक समुदाय आरोपी होता है वहां बहुत कुछ स्पष्ट होने के बावजूद न पुलिस जल्दी सक्रिय होती है न स्वयं को सेक्युलर ब्रिगेड का सदस्य मानने वाले एक्टिविस्ट। इस मामले में यह साफ दिख रहा है। हां, आम लोग अवश्य विरोध प्रदर्शन कर रहे हैं, सड़कों पर उतर रहे हैं। मुख्यधारा के मीडिया ने सोशल मीडिया पर आक्रोश और आम जनता के सड़कों पर उतरने के बाद इसका संज्ञान लिया। यह दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति है। क्या अपराध का विरोध मजहब देखकर किया जाएगा? ऐसा करके हम भविष्य के लिए कैसे समाज का बीजारोपण कर रहे हैं? इस पर विचार करना होगा।

अगर यह माहौल नहीं होता तो शायद पुलिस भी आरंभ में सक्रिय हो जाती। पुलिस पर भी मनोवैज्ञानिक दबाव होता है कि किसी अल्पसंख्यक को उठाकर पूछताछ की और वह अपराधी नहीं निकला तो देश भर के ये एक्टिविस्ट समस्या पैदा कर देंगे। हो सकता है कुछ नामी वकील सीधे उच्चतम न्यायालय चले जाएं। यह स्थिति भी अपराधियों की मदद करती है। खैर इन एक्टिविस्टों से परे समाज के हर तबके ने इसके खिलाफ आवाज उठाई है। कुछ ही घंटे में 70 हजार ट्वीट हो गए और उसके लाखों रीट्वीट होने लगे तो अलीगढ़ पुलिस को पूरी स्थिति साफ करनी पड़ी। उम्मीद है समाज की यह जागरूकता बनी रहेगी। यह अब तक के एकपक्षीय दोहरे चरित्र के एक्टिविज्म से अलग धारा होगी जो न्यायपूर्ण और औचित्यपूर्ण होगी। किंतु घटना घटित होने के बाद की जागरूकता के साथ स्थानीय स्तर पर सर्वत्र सतर्कता और जागरूकता की अधिक आवश्यकता है। इस सोच को खत्म करने के लिए समाज के बीच सक्रियता से काम करना होगा।

(लेखक वरिष्ठ पत्रकार हैं)

response@jagran.com

ऊर्जा

आत्म-सुधार

शरीर विनाशी और आत्मा अविनाशी है। यही शाश्वत सत्य है। ऐसा जानकर आत्म तत्व की ही उपासना करनी चाहिए। उपनिषदों में भी ऐसा ही कहा गया है कि आत्म-दर्शन करना चाहिए। आत्म-दर्शन ही मानव जीवन का परम लक्ष्य है। इस परम लक्ष्य से सांसारिक कर्तव्यों की कोई असंगति नहीं है। आशय यह है कि संसार में रहते हुए सांसारिक कार्यों को करना ही है। आवश्यकता मात्र यह है कि ऐसे कार्यों से आसक्ति यानी किसी तरह का कोई लगाव न हो। वास्तव में आसक्ति का अभाव ही तो मुक्ति है। दुख का कारण हमारी अनंत इच्छाएं ही तो हैं। जब इच्छाएं पूरी नहीं होतीं, तब हम दुखी हो जाते हैं। प्रयास करके इच्छाओं को कम करना चाहिए। संसार के समस्त पदार्थ विनाशी हैं। जो अविनाशी है, वह आत्मा है। यह आत्मा ही है, जिसके लिए कहा गया है कि शरीर के नष्ट हो जाने पर भी यह नहीं मरती।

साधकों को इस जीवन में ही सचेत होकर निरंतर आत्मचिंतन करना चाहिए। जीवन की समापन बेला आने के पहले ही प्रभु प्राप्ति का मार्ग प्रशस्त करें। प्रभु से प्रार्थना करें कि 'हे ईश्वर! मेरा मन आपके चरणों में लग जाए।' जीवन में सत्कर्मों को अपनाएं। पाप कर्मों से विमुख हो जाएं। कर्म सिद्धांत अटूट हैं। किए गए अपराधों के दुष्परिणामों को तो भुगतना ही होगा। इसलिए प्रयास करना चाहिए कि दुष्कर्म न हो। किसी को मत सताइए, किसी को पीड़ा मत दीजिए। चेत जाइए। अभी समय है। समय रहते ही स्वयं को सुधार लेना प्रत्येक व्यक्ति का कर्तव्य है। समय नष्ट हो जाने पर दुख करने से कुछ नहीं होगा। जो बीत गया उसे तो नहीं बदला जा सकता, अपितु उससे सबक लेकर आने वाले समय को अवश्य बेहतर बनाया जा सकता है। समय रहते सुधार किया जाना अपेक्षित है। अंतकाल में अचानक, कुछ भी न हो सकेगा। तैयारी अभी से होनी चाहिए। शुभ संकल्प अभी से जगाने होंगे। दूसरों का उपकार करें। सच तो यह है कि परोपकार से बढ़कर कोई धर्म नहीं है। परोपकार से आपको आत्मिक शांति मिलती है। संतों ने संदेश दिया है कि 'अच्छे कार्य करते रहें। सदाचार, परोपकार, भक्ति, ध्यान का मार्ग अपनाएं। आराधना द्वारा भगवान को अपना बनाएं। तभी आपकी मुक्ति सुनिश्चित है।' इन सभी आदर्शों को आत्मसात करके ही हम अपने जीवन को सार्थक बना सकते हैं।

डॉ. विजय नारायण गुप्त

लगातार बढ़ती प्लास्टिक की पैठ

फिर से

एक अनुमान के अनुसार यदि कोई व्यक्ति केवल बोतलबंद पानी पीता है तो एक साल में उसके शरीर में करीब 90,000 प्लास्टिक के टुकड़े जा सकते हैं

माइक्रोप्लास्टिक यानी इंसान के बनाए प्लास्टिक के छोटे छोटे टुकड़े इस वक्त अकेली ऐसी चीज है जो धरती पर हर जगह मौजूद हैं। अब वो चाहे सिंथेटिक कपड़ों से निकले टुकड़े हों, कार के टायरों से या फिर कांटैक्ट लेंस या रोजमर्रा काम आने वाली किसी और चीज से। दुनिया के सबसे ऊंचे इलाकों में मौजूद ग्लेशियरों से लेकर समंदर की गहरी से गहरी खाइयों तक में यह मौजूद हैं।

बीते दिनों हुए कई शोधकार्यों से पता चला है कि किस तरह माइक्रोप्लास्टिक इंसान की खाद्य शृंखला में घुस सकता है। यहां तक कि पिछले साल कई मशहूर ब्रांड की सीलबंद बोतलों में बिकने वाले पानी में भी प्लास्टिक के टुकड़े मिले। हाल ही में कनाडा के वैज्ञानिकों ने शोध के दौरान माइक्रोप्लास्टिक की मौजूदगी के बारे में तमाम आंकड़ों का विश्लेषण किया और फिर उन्हें अमेरिकी लोगों की खाने पीने की आदतों से तुलना की। उन्होंने पता लगाया है कि एक वयस्क इंसान एक साल में माइक्रोप्लास्टिक के करीब 52,000 टुकड़े अपने शरीर में डाल सकता है। उदाहरण के लिए जिस तरह की प्रदूषित हवा में हम जी रहे हैं उसमें केवल सांस के जरिये ही 1.21 लाख माइक्रोप्लास्टिक के कण शरीर में जा सकते हैं यानी हर दिन करीब 320 प्लास्टिक के टुकड़े। यदि कोई इंसान केवल बोतलबंद पानी पीता है तो एक साल में उसके शरीर में करीब 90,000 प्लास्टिक के टुकड़े जा सकते हैं। इस शोध के बारे में रिपोर्ट एनवायरमेंटल साइंस एंड टेक्नोलॉजी जर्नल में छपी है।

फिलहाल ये आंकड़े अनुमान हैं। वैज्ञानिकों का कहना है कि किसी इंसान के शरीर में प्लास्टिक के कितने कण जाएंगे, यह इस बात पर निर्भर करेगा कि वह कहां रहता है और क्या खाता है। उनका यह भी कहना है कि इंसान के शरीर पर माइक्रोप्लास्टिक का क्या असर होता है यह अभी ठीक से समझा नहीं गया है। हालांकि वैज्ञानिकों के मुताबिक, 130 माइक्रोमीटर से छोटे प्लास्टिक के कण में यह क्षमता है कि वे मानव ऊतकों को स्थानांतरित कर दें और फिर शरीर के उस हिस्से के प्रतिरक्षा तंत्र को प्रभावित करें।

एलेस्टेयर ग्रांट यूनिवर्सिटी ऑफ ईस्ट एंगलिया में इकोलॉजी के प्रोफेसर हैं। उनका कहना है कि शोध में जिन प्लास्टिक कणों की पहचान की गई है उनसे 'इंसान के स्वास्थ्य को बहुत खतरा होने' की बात अब तक सामने नहीं आई है। ग्रांट इस शोध में शामिल नहीं थे। हालांकि उनका कहना है सांस के जरिये शरीर में जाने वाली प्लास्टिक का एक बहुत छोटा हिस्सा ही वास्तव में फेफड़ों तक पहुंचता है।

शोधकर्ताओं का कहना है कि कितना माइक्रोप्लास्टिक हमारे फेफड़ों और पेट में जाता है और उससे क्या खतरा हो सकता है, इसे ठीक से समझने के लिए अभी और शोध की जरूरत होगी। वैज्ञानिकों का यह भी कहना है कि माइक्रोप्लास्टिक को इंसान के शरीर में पहुंचने से रोकने का सबसे कारगर तरीका यही होगा कि प्लास्टिक का निर्माण और उपयोग घटाया जाए।

इस शोध के नतीजे ऐसे वक्त में सामने आए हैं, जब हाल में संयुक्त राष्ट्र की ओर से पूरी दुनिया में विश्व पर्यावरण दिवस मनाया गया। इस बार की थीम भी वायु प्रदूषण रखी गई थी।

(डीडब्ल्यू से साभार)

मेलबाक्स

सुनियोजित विकास की जरूरत

संजय गुप्त ने अपने आलेख 'उम्मीदों पर खरा उतरने की चुनौती' में भारत को विकसित राष्ट्र बनाने के लिए जिस सुनियोजित विकास की बात की है, वह अब इस देश की जरूरत है। वर्ष 2014 के मोदी विजन ने भ्रष्टाचार मुक्त विकास का जो सपना जगाया था, उसे फलीभूत करने के लिए देश की जनता ने एक बार फिर उनको प्रचंड बहुमत के साथ प्रधानमंत्री पद पर आसीन किया है। अब यह मोदी की जिम्मेदारी बनती है कि वह सुनियोजित विकास की चुनौती को स्वीकार कर, भ्रष्टाचार मुक्त पारदर्शी कार्य-संस्कृति को विकसित करें। क्योंकि अभी तक विकास योजनाओं के क्रियान्वयन में सरकारी मशीनरी का भ्रष्टाचार आड़े आता रहा है। पूर्व प्रधानमंत्री राजीव गांधी की स्वीकारोक्ति के अनुसार विकास योजनाओं के लिए केंद्र से निकला एक रुपया धरातल तक पहुंचते-पहुंचते 25 पैसे रह जाता है, शेष 75 पैसा भ्रष्टाचारियों की जेब में पहुंच जाता है। देश में व्याप्त आर्थिक भ्रष्टाचार की इस हकीकत को 2014 में प्रधानमंत्री मोदी ने समझा और अपनी युक्तियों से जनहितैषी योजनाओं को भ्रष्टाचार मुक्त तरीके से लाभार्थियों तक पहुंचाया। बावजूद इसके सुनियोजित विकास की बात अभी भी अधूरी है, जिसे पूरा करने की जरूरत है। गांव से शहर तक बढ़ती आबादी के अनुरूप बिजली, पानी और आवास की आवश्यकताओं के साथ सड़क, नाली, पार्क आदि सुनियोजित रूप से विकसित किए जाएं। सुनियोजित विकास की यह कार्य-संस्कृति हर उस सरकारी विभाग में विकसित की जाए, जिसका सीधा संबंध विकास योजनाओं के क्रियान्वयन से है। स्वास्थ्य, शिक्षा और आंतरिक सुरक्षा जैसे महत्वपूर्ण विभागों को जन-सेवा के मूल मंत्र से समन्वित कर भ्रष्टाचार से मुक्त किया जाए। मोदी सरकार के दौरान यदि सुनियोजित विकास का यह ढांचा देश के अंदर खड़ा गया तो 2024 के बाद भारत को विकसित राष्ट्र बनाया जा सकता है।

डॉ. वीपी पाण्डेय, अलीगढ़

आर्थिक सर्वेक्षण के लाभ

देश में बेरोजगारी की समस्या चिंताजनक हैं। केंद्र सरकार आर्थिक सर्वेक्षण कराने जा रही है। ऐसा अनुमान है कि अगले छह माह में देश का समग्र आर्थिक सर्वेक्षण का काम पूरा कर लिया जाएगा। दरअसल केंद्र सरकार ने इस सर्वेक्ष